ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-10*November- 2021
Innovation The Research Concept

गैर दलित महिला लेखन में अभिव्यक्त दलित चेतना

Dalit Consciousness Expressed in Non- Dalit Women's Writings

Paper Submission: 15/11/2021, Date of Acceptance: 23/11/2021, Date of Publication: 24/11/2021

रश्मि चतुर्वेदी
विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
महिला महाविद्यालय परा.,
किदवई नगर, कानपुर,
उत्तरप्रदेश, भारत

सारांश

भारतीय समाज में बहुसंख्यक हिंदू समुदाय के एक प्रमुख घटक के रूप में दलित शब्द का प्रचलन एवं प्रयोग स्वतंत्रता आन्दोलन के समय का है जिसकी उत्पत्ति लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व मनुस्मृति के काल खण्ड में शूद्र की संज्ञा से हुई जिनका कार्य समाज की सेवा करना था। उत्तर वैदिक काल में वर्ण.व्यवस्था के अन्तिम पायदान पर खड़ा यह शूद्र समाज का आधार जन्मगत हो गया तथा इनका कार्य निम्न कोटि का होने के कारण कालान्तर में समाज के अन्य उच्च वर्गों ने उन्हे अस्पृश्य घोषित कर, मानवीय संवेदनाओं से विरत होकर उनके समकक्ष के मानवाधिकारों पर चोट की। भारत की राजनैतिक आजादी के पश्चात इन्हें चिन्हित कर अनुसूचित जातियों की श्रेणी में सूचीबद्ध कर भारतीय संविधान की अनुसूची पाँच व छै में शामिल किया गया। लेकिन आज भी इनकी आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक स्तर पर की गयी उपेक्षा एवं बहिष्कार के प्रति विद्रोह व समकक्ष के अधिकारों को पाने की लड़ाई जारी है। स्वभावतः साहित्य में भी इस द्वन्द की अभिव्यक्ति परिलक्षित हुई तथा प्रारम्भ में दलितों के शोषण, उत्पीड़न, सुधार, उद्धार की चर्चा का परिदृश्य गैर दलित लेखकों ने करना प्रारम्भ किया जिसमें प्रेमचन्द जैसे कहानी एवं उपन्यासकार का नाम आदर से लिया जाता है। लेकिन समय के साथ-साथ दलित रचनाकारों द्वारा भी सर्वहारा वर्ग यानि दीन-हीन उपेक्षित, शोषित, दलितों की संवेदना एवं समकालीन मानव अधिकारों तथा सांस्कृतिक साम्य एवं सामाजिक न्याय के प्रति छटपटाहट को व्यक्त करने हेतु कहानी उपन्यास या साहित्य की अन्य विधाओं में अभिव्यक्ति होने लगी।

इस स्थिति में दलित चेतना से सम्पृक्त साहित्यकारों में खेमेबाजी तथा बौद्धिक समालोचना का दौर प्रारम्भ हो गया जिसमें गैर दलित साहित्यकारों के सहानुभूतिपरक साहित्य बनाम दलित रचनाकारों द्वारा सृजित स्वानुभूतिपरक साहित्य की श्रेष्ठता एवं स्वाभाविकता पर बहस एवं चर्चा होने लगी तथा गैरदलितों को दलित साहित्य में योगदान तथा मूल्यांकन भी होने लगा। जबकि एक बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि दलित साहित्य की शुरूआत ही गैर दलित साहित्यकारों द्वारा हुई है यद्यपि इससे भी ज्यादा दिलचस्प बात यह है कि दलित लेखकों ने गैरदलितों के दलित साहित्य को सिरे से ही नकार दिया है। लेकिन सच्चाई तो यह है कि हिन्दी साहित्य में गैर दलित रचनाकारों की एक लम्बी श्रंखला मिलती है जिन्होने अपनी रचनाओं में दलितों के त्रासदीपूर्ण जीवन को अभिव्यक्त किया है। वस्तुतः गैर दलित साहित्य से आशय ऐसे दलित साहित्य से है जो गैर दलित साहित्यकारों द्वारा तटस्थ भाव से जाति के बन्धनों से परे दलित उत्पीड़न, शोषण, पीड़ा और उनकी समस्याओं को समाज तथा व्यवस्था के दवाब के विपरीत उठाता है और उनकी उन परिस्थितियों के परिवर्तन की आशा भी रखता है। इस दृष्टि से मुंशी प्रेमचन्द से लेकर वर्तमान युग तक विभिन्न गैरदलित रचनाकारों के नाम दृष्टिगत है जिन्होने साहित्य जगत को विभिन्न कहानी तथा उपन्यास दिये हैं। इसी श्रंखला में महिला कथाकारों का योगदान भी सराहनीय है जिन्होने अपने कथा साहित्य में दलितों की विभिन्न समस्याओं को अभिव्यक्त कर दलित जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। मेरे इस शोधपत्र में गैर दलित महिला कथाकारों का दलित चेतना के संदर्भ में उनके द्वारा लिखित कथा साहित्य का योगदान दर्शाया गया है। जिसमें मुख्य रूप से मन्नू भंडारी, मंजुल भगत, चित्रा मुदगल, कृष्णा अग्निहोत्री, मैत्रेयी पुष्पा, नमिता सिंह, रमणिका गुप्ता, मृदुला गर्ग आदि लेखिकाओं का नाम लिया जा सकता है जिन्होने दलित चेतना के विकास में अपने कथा साहित्य के माध्यम से विशेष योगदान दिया है।

The practice and use of the word 'Dalit' as a major component of the majority Hindu community in Indian society dates back to the time of the independence movement, which originated about three thousand years ago in the period of Manusmriti with the name of Shudra, whose function was to serve the society. In the later Vedic period, this Shudra, standing on the last rung of the varna system, became the basis of the society and because of their work being of low order, later other upper classes of the society declared them untouchablesBy turning away from human sensibilities, they attacked the human rights of their counterpart. After the political independence of India, they were identified and listed in the category of Scheduled Castes and included in Schedule V and VI of the Constitution of India. But even today, the fight against their neglect and exclusion at the economic, social and cultural level and the fight for equal rights

continues. Naturally, the expression of this conflict was also reflected in Hindi literature and in the beginning the exploitation of DalitsNon-Dalit writers started doing the scenario of discussion of oppression-economic reforms, rescue, in which the name of story and novelist like Premchand is taken with respect. with the passage of time, the story of the proletariat i.e. the oppressed, the neglected, the oppressed, the Dalits and the contemporary human rights and cultural equality and social justice began to be expressed in other genres of literature.In this situation, a period of camp and intellectual criticism started among the writers concerned with Dalit consciousness, in which there was a debate and discussion on the superiority of naturalness vs"sympathetic" in literature Dalit and non Dalit writers. Evaluation also started. Whereas one thing can be said with certainty that Dalit literature itself has been started by non-Dalit litterateure, although even more so.More interestingly, Dalit writers have outrightly rejected the Dalit literature of non-Dalits. But the truth is that there is a long series of Dalit writers in Hindi literature who have expressed the tragic life of Dalits in their works. In fact, Dalit literature refers to such Dalit literature, which has been neutralized by non-Dalit litterateure, beyond the shackles of caste, Dalit oppression, exploitation, pain and their problems under the pressure of society and system. In this connecton non Dalit women's literature is also worth appreciable who has explained various problems of oppressed life in their creations in a natural way.

Hence, with this reference mainly and majority the names of, Mnnu Bhandari, Manjula Bhagat, Chitra Mudgal, Krishna Agnihotri, Matrai Puspa, Namita Singh, Ramanika Gupta, Mridula Garg etc. May be taken with regards as a counribution to Dalit Conciousness in my reserach paper

मुख्य शब्द दलित, गैरदलित, महिला लेखन, दलित चेतना।
Dalit and non Dalit writers, Dalit Consciousness.

प्रस्तावना

सन् 1958 में सुप्रसिद्ध सामाजिक कर्मी 'ताराअलीबेग' ने 'वीमेन आफ इण्डिया' पुस्तक सम्पादित की जिसकी भूमिका में पं. जवाहर लाल नेहरू ने लिखा कि एक फ्रांसीसी ने एक बार लिखा था कि "किसी देश की वास्तविक स्थिति को जानने का सबसे अच्छा उपाय यह पता लगाना है कि वहाँ महिलाओं की स्थिति कैसी है ? [1] इसी संदर्भ में 'दि फीमेल यूनेक' की लेखिका 'जर्मन ग्रीयर' लिखती हैं कि "संसार की ज्यादातर औरतें अब भी डरी हुई हैं, अब भी भूखी हैं, अब भी गूँगी हैं और धर्म द्वारा तमाम तरह की बेड़ियों से जकड़ी हैं, उनके चेहरे पर नकाबें हैं, मुँह पर गुहारें। उनके अंग-भंग हैं, वे पिटी हुईं हैं।'[2]

साहित्य में महिला लेखन की कोई प्राचीन परम्परा नहीं मिलती है। वैदिक युगीन कुछ महिलाएँ साहित्य और ललित कलाओं में भी मर्मज्ञ एवं विदुषी थीं, जिसमें आत्रेयी, गार्गी, वाचानयवी, मैत्रेयी, सुलभा, घोषा, अपाला, लोपामुद्रा आदि का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने कुछ वेद की ऋचाओं एवं ग्रंथों का निर्माण किया लेकिन ये केवल अपवाद स्वरूप ऋषि कन्याएं थीं। डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर लिखते हैं कि "भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री दलितों में भी दलित है। इस व्यवस्था ने न केवल उसकी अस्मिता को नकारा है अपितु उसे हमेशा दोयम दर्जा दिया है। ज्ञान क्षेत्र से लेकर धर्म क्षेत्र तक में उसका प्रवेश वर्जित था। हजारों वर्षों से यह स्त्री उपेक्षिता का जीवन जी रही थी।[3] डॉ. सुदेश बत्रा अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास: बदलते परिवेश में लिखते हैं कि "प्रेमचन्द पहले ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने राष्ट्रव्यापी जनचेतना और समाजवादी सुधारवादी अवधारणा को व्यापक प्रसार देने के लिए समाज के दलित और शोषित वर्ग की वास्तविक स्थिति को प्रकट किया है।

हिन्दी साहित्य में "नारी चेतना' का विकास प्रेमचन्द द्वारा शुरू किया गया, उन्होंने नारी मुक्ति, विधवा विवाह, पारिवारिक विघटन, एवं नैतिक मूल्यों के चित्रण को अपने साहित्य के केन्द्र में रखा है। स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं में सर्वप्रथम 'कृष्णा सोबती' ने धमाका किया। वह 'मित्रो मरजानी' में अपनी इच्छाओं और दमित यौन कामनाओं पर इतने तीव्र स्वर में बोली कि पूरी की पूरी हिन्दी पट्टी गूँज उठी। उर्दू में यही काम 'इस्मत चुगताई' ने स्त्री की यौनिक मजबूरियों के नाम पर अपनी कहानी 'लिहाफ' में पर्दा क्या उठाया कि भूचाल आ गया पूरे देश में। 'कृष्णा सोबती' की 'मित्रो मरजानी' ने तो औरत की ज़बान पर लगे ताले ही तोड़े थे लेकिन बाद में भोगे हुए सच पर आधारित आत्म कथाओं ने समाज को आइना दिखाने की हिम्मत की। दक्षिण में 'कमलादास' ने आत्मकथा लिखकर तो पंजाब में 'अमृता प्रीतम' ने 'रसीदी टिकट' लिखकर लेखिकाओं को प्रेरणा दी।

इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर लेखिकाओं में कृष्णा सोबती के अतिरिक्त मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मालती जोशी, शिवानी, शशिप्रभा शास्त्री, मेहरुन्निसा परवेज, राजी सेठ, ममता कालिया, रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग का समावेश होता है। लेकिन दलितों की समस्याओं को अपने साहित्य लेखन का केन्द्र बनाने वाली कुछ गैर दलित महिला कथाकारों में मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, रमणिका

गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुदगल, मंजुल भगत, कृष्णा अग्निहोत्री व नमिता सिंह का नाम उल्लेखनीय है।

मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज' एक राजनीतिक उपन्यास है; लेकिन उस राजनीति का मोहरा बनते हैं दलित वर्ग के लोग। उपन्यास में यह बखूबी दर्शाया गया है कि अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए राजनेता किसी भी हद तक गिर सकते हैं। चाहें किसी दलित की हत्या हो या फिर हरिजन बस्ती में अग्निकांड। पूरी संवेदना के साथ बाँटते हैं मुआवजा और खाते हैं हरिजन के घर खाना। इसी गन्दी राजनीति का सशक्त उदाहरण है उपन्यास 'महाभोज' । इसमें दा साहब, त्रिलोचन और सुकुल बाबू दलितों से खेल खेलते हैं। किन्तु दलित बिन्दा दा साहब की भ्रष्ट राजनीति को सबके सामने उछालता है, अग्निकाण्ड के बारे में वह कहता है कि 'अरे दा साहब, काहे यह नौटंकी कर रहे हो यहाँ हरिजनों को जिन्दा जला दिया गया और आपकी सरकार और आपकी पुलिस देखती रही और ऊपर से महीने भर से खुद तमाशा कर रहे है; हुआ आज तक कुछ नहीं।'5 'महाभोज' उपन्यास के दो सशक्त दलित चरित्र - बिन्दा और बिसेसर शिक्षा की शक्ति को दलित समस्याओं के निराकरण का आधार मानते हैं। इसीलिए बिसेसर शहर से उच्च शिक्षा प्राप्त कर गाँव में लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए लोगों के घर-घर जाकर और स्कूल चलाकर शिक्षित करता है। लेकिन उसकी हत्या भी इसी कारण कर दी जाती है। दरअसल मन्नू भंडारी 'महाभोज' के माध्यम से उपन्यास में यह दिखाती हैं कि उच्च वर्ग दलित वर्ग को कभी उठने नहीं देना चाहता है और मंच की भाषा तथा सामाजिक व्यवहार में काफी अंतर होता है। कानून व्यवस्था भी केवल उच्च वर्ग के लिए स्थापित है। जिसे वो स्वयं तोड़-मरोड़ सकता है लेकिन गरीब हमेशा कानून का शिकार होता है। 'महाभोज' उपन्यास राजनीतिक षडयंत्रों को परत-दर-परत उधेड़ता है। नेताओं के फरेबी भाषणों और 'वोट बैंक' के तिलस्म को उजागर करता है। गरीब, हरिजन, मजदूरों के शोषण और छलावे को खोलता है। उसे काम का पूरा वेतन भी नहीं दिया जाता है और चुनाव आने पर उसे भाषणों से तृप्त किया जाता है। इस प्रकार मन्नू भंडारी ने अपने उपन्यास 'महाभोज' के माध्यम से एक नयी शुरूआत की, गैरदलित महिला लेखक होकर भी उन्होने दलित पात्रों को अपने कथा साहित्य में उकेरा और उनकी त्रासदी तथा पीड़ाओं को संजोया है।

इसी कड़ी में गैरदलित लेखिकाओं में एक विशेष उल्लेखनीय रचनाकार है 'मैत्रेयी पुष्पा'। इस दिशा में उनका उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' का योगदान सराहनीय है। मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' की कथावस्तु के लिए एक ऐसी जनजाति को चुना है जिन्हें समाज में अब तक कोई स्थान नही मिल सका है।

मैत्रेयी पुष्पा ने मुख्यतः बुंदेलखण्ड में बसने वाली कबूतरा जनजाति के जीवन को उपन्यास का विषय बनाया है, जो अपनी वंश की परंपरा रानी पद्मिनी और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की अंगरक्षिका झलकारी बाई से जोड़ते हैं। इसके साथ ही लेखिका ने समानान्तर सभ्य समाज से जिन्हें वे 'कज्जा' कहकर पुकारती हैं, शोषक वर्ग के रूप में इनका चित्रण बड़ी ही सफलता से किया है। वस्तुतः 'कज्जा' और 'कबूतरा' का द्वन्द ही 'अल्मा कबूतरी' का केन्द्रीय विषय है भूरी उसके बेटे राम सिंह और उसकी बेटी अल्मा की कहानी उनके अपमान, संघर्ष और पीड़ा की कहानी है। इन पात्रों द्वारा सभ्य समाज से संघर्ष कर अपना सब कुछ दाँव पर लगा देने के बावजूद 'लहूलुहान' कबूतरा ही रहते हैं। इसका कारण यह है कि पूरी व्यवस्था ही अपनी पूरी शक्ति के साथ उनके विरोध में खड़ी है। भूरी 'कज्जा' समाज से टक्कर लेती है। वह शरीर का सौदा करके भी अपने बेटे को पढ़ा लिखाकर इस योग्य बनाना चाहती है कि वह समाज में सम्मान की जिंदगी जी सकें। "पतिविरता लुगाई अपने आदमी के संग सती होती है। मैं अपने मर्द की ब्याहता खुद को तब मानूँगी जब रामसिंह को पढ़ा लिखाकर इसी कचहरी के दरवाजे खड़ा कर दूंगी। भले इस सफर में मुझे दस मर्दो के नीचे से गुजरना पड़े।6 आततायियों को साहस के साथ झेलती है, पशुओं से भी बदतर जिन्दगी जीने को बाध्य होती है पर हार नहीं मानती। श्री राम शास्त्री को मुखाग्नि देकर अल्मा उनका कार्यभार खुद संभालने का निर्णय करती है। लेखिका उसकी कहानी को एक आकस्मिक मोड़ देकर अल्मा कबूतरी से श्रीमती अल्मा शास्त्री तथा बबीना विधान सभा सीट का प्रत्याशी बनाकर कथा को विश्राम देती है। यह उपन्यास अपराधी कबूतरा जनजाति के समाज की मुख्य धारा में शामिल होने की प्रक्रिया पर आधारित है।

गैरदलित लेखिकाओं की दलित लेखन श्रृंखला की अगली कड़ी के रूप में 'कृष्णा अग्निहोत्री' एक ऐसा नाम है; जिन्होंने अपने लेखन में जीवन के अनेक अनुभवों को संजो रखा है। उन्होंने दलित लेखन में अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'टपरेवाले' में सत्य और यथार्थ के कटु अनुभवों को उकेरा है। लेखिका ने 'टपरेवाले' उपन्यास में दलित बसोड़, बलई, व महार जाति के लोगों के जीवन का वर्णन किया है। इस जाति के लोग कहीं भी टपरे यानि कच्चा छप्पर डालकर रहने लगते हैं और वहीं बस जाते हैं। लेखिका ने टपरे वालों की जिंदगी को नजदीक से देखा और महसूस किया था और उन्हीं की जिन्दगी को विषय बनाकर उन्होंने यह उपन्यास लिखा है। कृष्णा अग्निहोत्री ने दलित पात्रों को

केन्द्र में रखकर उपन्यास में राजनेता, राजनीति, अंधविश्वास, जाति व्यवस्था, शिक्षा, नारी शोषण, भ्रष्टाचार आदि पर यथार्थ कटाक्ष किया है।

इसी श्रंखला में 'मंजुल भगत' एक प्रसिद्ध नाम है, जिन्होंने साहित्य के क्षेत्र में बड़ा योगदान दिया। उन्होंने कई कहानी संग्रहों की रचना की जैसे गुलमोहर के गुच्छे, क्या छूट गया, आत्महत्या से पहले, कितना छोटा सफर, बावनपत्ते और एक जोकर आदि लेकिन उनके द्वारा लिखित उपन्यास 'अनारों' से उन्हें असली प्रसिद्धि प्राप्त हुई । 'अनारो' मंजुल भगत का उपन्यास गरीब मजदूर औरत के शोषण की कथा प्रस्तुत करता है।

यह उपन्यास एक निम्न जाति की गरीब मजदूर औरत अनारों की कथा है जो घर-घर में बर्तन माँजकर अपना और अपने परिवार का गुजारा करती है। 'अनारो' जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखने वाली स्त्री है। मंजुल भगत ने 'अनारो' में एक निम्नवर्गीय कामकाजी नारी जीवन को उकेरा है। सुबह से शाम तक दस घरों में काम करनेवाली अनारो का जीवन पशु से भी बदतर बन जाता है। उसका पति नन्दलाल उसे कई बार अकेला छोड़कर भाग जाता है। उसकी सौतन भी घर में ले आता है। लेकिन परंपरावादी और रीतिरिवाजों को मानने वाली अनारों अपनी बेटी की शादी में पति की अनुपस्थिति स्वीकार नहीं कर पाती। अनारों का पति नंदलाल अपनी पत्नी को केवल भोग विलास का, पेट पालने का और घर का खर्च चलाने का साधन समझता है, लेकिन 'अनारो' अपनी कमाई का एक-एक पैसा बचाकर बेटी की शादी का इन्तजाम करती है इतना ही नहीं अपने पति को खोजने बम्बई तक चली जाती है। इस प्रकार लेखिका ने निम्न जाति की अनारों के संघर्ष के कई स्तरों को लिखा है। मंजुल भगत का यह संदेश है कि गरीब अपनी परिस्थितियों से जीवन भर लड़ता रहता है और इसी संघर्ष से साहसी और निडर बनता है।

गैरदलित लेखिकाओं द्वारा किए गए दलित लेखन की अगली कड़ी में 'नमिता सिंह' का नाम बड़े ही सम्मान से लिया जाता है। आपका 'अपनी सलीबें' उपन्यास 1996 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास मानवीय जीवन की विसंगतियों, उनके संघर्षों और समस्याओं का दस्तावेज है। इस उपन्यास की मुख्य समस्या जातीय दंभ है, जो कि व्यक्ति के रूढ़िगत संस्कारों में जकड़े होने के कारण उत्पन्न हुई है।

'अपनी सलीबें' का नायक ईशू यानि ईश्वरचन्द अनाथ होते हुए भी गाँव के पंडित रामचंद्र के परिवार का सहारा पाकर उच्च शिक्षा ग्रहण करके 'कलक्टर' बनता है। उसकी पत्नी नीलिमा एक राजपूत घराने की सुशिक्षित युवती है। चार वर्ष के सुखी वैवाहिक जीवन के बाद नीलिमा को जब यह मालूम चलता है कि ईशू की जाति चमार है तो वह उसे बर्दाश्त नहीं कर पाती है। नीलिमा यह समझती है कि अपनी जाति छिपाकर ईशू ने उसे धोखा दिया है और वह रिसर्च के बहाने उसकी जिन्दगी से दूर चली जाती है। पढ़ी-लिखी आधुनिक विचारोंवाली युवती होने के बावजूद नीलिमा रूढ़िगत संस्कारों एवं जातीय दंभ में लिपटी हुई है। राजनीति तथा प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के चलते ईशू जैसे कुशल कलक्टर को अपनी जान गवानी पड़ती है। वह मुख्यमंत्री और गृहमंत्री के आपसी तनाव का निशाना बनकर गोलियों का शिकार होता है। जीवन के उन्हीं अंतिम क्षणों में कई सालों बाद नीलिमा ईशू से मिलने अस्पताल पहुँचती है तो ईशू को उसके प्रति कोई शिकवा-गिला नहीं होता। नीलिमा के सामने ही ईशू हार्ट अटैक से मर जाता है। उसके पास अब जिन्दगी भर पछताने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता। लेखिका यहाँ यह स्पष्ट करती हैं कि ईशू उच्च कुल का नहीं वरन चमार जाति का है इसलिए नीलिमा अपने सुखी दाम्पत्य जीवन का अंत कर देती है। समाज का उच्चवर्ग दलित वर्ग से शादी-विवाह जैसे बंधन बाँधने से हमेशा दूर रहता है। जिसको वह स्पर्श करना नहीं चाहता वहाँ ऐसे रिश्ते पर विचार-विमर्श करना भी सम्भव नहीं होता है। केवल जाति को आधार बनाकर नीलिमा द्वारा अपने सुखी दांपत्य जीवन का अंत करने पर उसकी अनपढ़ गँवार माँ उसे समझाते हुए कहती है कि "बेटी, ईशू के पास पद है। सम्मान है। उसके मन में तुम्हारे लिए जो मान है उसकी तुमने कोई परवाह नहीं की। एक जिन्दगी सिर्फ एक जिन्दगी मिलती है मानुष जात को जीने के लिए। उसे भी कोई जाति-पाँत, धरमबेधरम, छोटा-बड़ा के चक्कर में गुजार दे और सारी जिन्दगी रीति रह जाए, इसमें क्या अक्लमंदी है। तुम तो बहुत पढ़ी-लिखी समझदार हो बेटी।7 ठकुरानी सुमित्रा देवी जो कि नीलिमा की माँ हैं वे इस उपन्यास की प्रगतिशील नारी है जो अपनी बेटी के झूठे जातीय दंभ एवं अपने दामाद ईशू के निश्छल मन को बखूबी समझती है। लेखिका ने इस उपन्यास में सहज ढंग से जाति बंधन पर करारा प्रहार किया है।

चित्रा मुदगल जिन्होंने अनेक कहानी संग्रह एवं उपन्यास लिखे। इस संदर्भ में उनका चर्चित उपन्यास 'आवां' है। जिसे लेखिका ने अपनी बेटी को समर्पित किया है। इस उपन्यास में जहाँ एक ओर निम्न, दलित महिलाओं के शोषण को दर्शाया गया है वहीं दूसरी ओर 'नमिता' के माध्यम से लेखिका ने 'किराये की कोख' जैसी नई समस्या को उठाया है। 'आवां' उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र 'नमिता' अपने पिता देवीशंकर पांडेय के लकवाग्रस्त हो जाने पर घर की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए अपनी पढ़ाई छोड़कर, छोटे-मोटे काम करने लगती है। कामगार अघाड़ी में उसे पिता की जगह नौकरी मिलती है लेकिन अन्ना साहब के विकृत यौनाचार का शिकार होने के बाद वह नौकरी छोड़

देती है। .. पवार जो कि कामगार आघाड़ी का सक्रिय सदस्य है और दलित डोम जाति का है। वह अन्तर्मन से नमिता से विवाह करना चाहता है लेकिन उसे दुख भरा एहसास रहता है कि नमिता पाण्डे से उसका विवाह जाति के कारण नहीं हो सकेगा। सुनंदा और पंढरी बाई जैसी श्रमिक महिलाएँ श्रम शोषण का शिकार बनती हैं क्योंकि वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हैं। सुवर्णा एक जागरूक नारी है जो अपने पति के अत्याचारों के प्रति विरोध प्रकट करती है और बेटी गौतमी एवं अपने जीवन को नरक से बचाने के लिए पति से तलाक लेकर पुनर्विवाह करती है। आवां' उपन्यास के सभी नारी-पात्र किसी न किसी संघर्ष में जूझते दिखाई देते हैं। वे अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं खोजते हैं।

'आवाँ' उपन्यास की नायिका नमिता अपने पिता के देहांत होने पर उनका क्रियाकर्म खुद करती है। वह कहती है क्रियाकर्म मैं करूँगी, पंडित जी मुखाग्नि भी मैं दूंगी। मैं पांडेय की बड़ी बेटी हूँ। छुन्नू बच्चा है। बच्चे के हाथ से क्रियाकर्म करवाना उचित नहीं, बाबूजी जिन्दा थे तो अक्सर कहा करते थे "मरने पर तू ही मेरा क्रियाकर्म करेगी। तू मेरी समर्थ बेटी है। दस बेटों के बराबर ।'8 इस प्रकार लेखिका ने अपने उपन्यास में शोषण के खिलाफ विद्रोह, नारी की अस्मिता एवं पुरानी मान्यताओं के टूटने का संदेश दिया है।

गैरदलित महिलाओं द्वारा किए गए दलित लेखन की एक मजबूत कड़ी के रूप में मृदुला गर्ग का योगदान सराहनीय है। मृदुला गर्ग दलित वर्ग के प्रति अति संवेदनशील थीं। उन्होंने अनेक कहानी संग्रहों की रचना की है। उनके 'शहर के नाम' कहानी संग्रह में दलित विमर्श से जुड़ी कई कहानियाँ हैं। सन् 1990 में प्रकाशित इस संग्रह की तीन कहानियाँ शहर के नाम, तीन किलो की छोरी एवं अनाड़ी इस संदर्भ में काफी चर्चित हैं। 'शहर के नाम' कहानी की 'लड़की' एक ऐसी नारी पात्र है जो उच्च जाति की होते हुए भी दलितों के प्रति सबसे ज्यादा सहानुभूति रखती है। उसके मन में समाज के अछूत लोगों के लिए गहरी संवेदना होने के कारण उनको समाज में सम्मानीय स्थान दिलवाना चाहती है। इस लड़की के जीवन की सबसे बड़ी बिडम्बना यह बन जाती है कि जिसके लिए वह लड़ती थी उसी में से एक ने उसकी सहानुभूति का गलत मतलब निकाला। उसे परिवार वाले और समाज के लोग समझ नहीं पाए। अंत में हताश होकर वह आत्महत्या कर लेती है।

इस कहानी संग्रह की एक और कहानी 'अनाड़ी' सवर्ण वर्ग की झूठी मानसिकता को प्रस्तुत करती है। गरीब घर की सुवर्णा पढ़ने की उमर में लोगों के घर में काम करती है। अपनी मालकिन को सजते सँवरते देख उसे भी सहज इच्छा हो जाती है कि वह भी अपने नाखून रंगे। अपनी इच्छा वह मालकिन के सामने जताती है। मालकिन अपने पति को यह बात बताती है तो वह मालकिन को सावधान रहने की सलाह देता है कि कहीं सुवर्णा चोरी न करने लग जाए। दूसरे दिन सुवर्णा सोफे पर लेटकर बिस्कुट खाती है तभी मालकिन उसे घसीटकर घर से बाहर निकाल देती है। इस कहानी के द्वारा लेखिका ने बताया है कि सुखी-सम्पन्न वर्ग नौकरों को अपने समानान्तर चलते हुए नहीं देख सकता। इसी प्रकार कहानी संग्रह 'शहर के नाम' की एक अन्य कहानी 'तीन किलो की छोरी'' में शारदा बेन एक ऐसी अस्पृश्य स्त्री है जो दाई का काम करती है लेकिन मेहनती एवं आत्मनिर्भर है। वह स्त्री-पुरुष की बराबरी एवं समानता हर एक समाज में देखना चाहती है। लेकिन अपने पति के सामने खुद को हीन समझती है। सवर्ण मास्टर भाई की बहू बीमारी में जब उसका हाथ थाम लेती है तो शारदा बेन सोचती है कि उसका अस्पृश्य होना कोई मायने नहीं रखता। वे एक अशिक्षित और ग्रामीण औरत होते हुए भी एक जागरूक स्त्री है।

रमणिका गुप्ता का चर्चित कहानी संग्रह 'बहू जुठाई' है, जिसमें आदिवासी, दलित एवं स्त्रियों की कहानियाँ है। उनके द्वारा रचित उपन्यास 'सीता' और 'मौसी' भी इसी संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। 'सीता' और 'मौसी' आदिवासी समाज से जुड़ी स्त्रियों की संघर्ष गाथा है। करमाली जनजाति की 'सीता' एवं 'मुंडा' जनजाति की मौसी के मजदूर जीवन को प्रस्तुत किया गया है।

'सीता' उपन्यास की आदिवासी नारी सीता राँची जिले के खूटी गाँव से केदला कोयला खदानों में अपनी माँ और तीन बहनों के साथ कमाने आई है। उसका पति भगोड़ा होने के कारण दोनों बेटियों की जिम्मेदारी सीता उठाती है। सीता न्याय की लड़ाई लड़ने के साथ मजदूरों के अधिकारों के लिए लड़ती है। साथ ही खदानों में काम करने वाली औरतों की समस्याओं को सुलझाती है।

'मौसी' उपन्यास की मौसी सलीम से प्रेम करती है लेकिन संयोगवश उसे सलीम के अब्बा की रखैल बनना पड़ता है। उसके बाद राजपूत नेता भगवान सिंह भी उसे अपनी रखैल बनाकर रखते हैं। मौसी के बारे में रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि - 'क्या होगा इस समाज का ? क्या होगा इस औरत का ? जिसे न आदिवासी अपना समझता है न दिक ही अपना कहता है। वह न गाँव की रही, न शहर की। कहाँ जाएगी मौसी।9

जब मौसी दुसाध जाति के हम उम्र माधो के साथ जिन्दगी बिताना चाहती है तो उसके निर्णय को स्वीकार नहीं किया जाता और माधो को बुरी तरह पीटकर शहर से दूर भगा दिया जाता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने आदिवासी स्त्री की बेबसी एवं लाचारी को प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार रमणिका गुप्ता ने अपने चर्चित 'बहू जुठाई' कहानी में सवर्णों द्वारा निम्न वर्ग की औरतों के शारीरिक एवं मानसिक शोषण को प्रस्तुत किया है। इस कहानी के अंत में वह सदियों से चली आ रही घिनौनी प्रथा को निम्न वर्ग के द्वारा तोड़ती हैं। लेखिका द्वारा लिखित कहानी 'खुश रहो' की नारी-पात्र वकील की माँ जो कि 'चमरटोली' की है वे अपनी जाति के लोगों को बाबू-साहबों की गुलामी न करने के लिए प्रेरित करती है। उनकी हिम्मत देखकर जब बाबू लोग उनको मारने के लिए लाठी-धारियों को भेजते है तब वे चिल्ला-चिल्लाकर कहती है " क्यों मार खायेंगें हम लोग? कोई कर्ज खाया है क्या? कर्ज भी खाया है तो चुका देंगें पर नही खायेंगें मार। मारो हो, मारो। हम कोई मौंगा है क्या?"10 चमरटोली के लोगों से बदला लेने के लिए उच्चवर्गीय बाबू लोग उनकी बस्ती में आग लगवा देते हैं। जब डर के मारे बस्तीवाले दूर भाग जाते हैं तब वकील की माँ उन्हे बाबू साहबों को सबक सिखाने के लिए समझाती है और जिन्होने आग लगाई थी उनके खिलाफ बयान देती है।

इस प्रकार विभिन्न गैर दलित लेखिकाओं द्वारा किया गया दलित वर्ग का चित्रण सराहनीय है, जिसमें से कुछ चुनी हुई लेखिकाओं का योगदान यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र "गैर दलित महिला लेखन में अभिव्यक्त दलित चेतना" हिन्दी साहित्य में गैर दलित महिला लेखिकाओं द्वारा लेखन के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं के सन्दर्भ में दलितों को जागरूक करने एवं उनके सामाजिक आर्थिक शोषण को अभिव्यक्त करने का प्रयास हैं जिसमे भारतीय समाज में दलितों के सशक्तिकरण व संरक्षण की भावना सन्नहित हैं जो भारतीय राजव्यवस्था का भी एक प्रमुख केनद्रस्थ विचार हैं |

निष्कर्ष

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि साहित्य लेखन की परम्परा में आमूल-चूल परिवर्तन हो रहे हैं। उत्तर आधुनिकता के प्रभाव के कारण साहित्य में जो विषय हाशिए पर थे वह अब केन्द्रीय विमर्श का विषय बन चुके हैं चाहे वह आदिवासी विमर्श हो , स्त्री विमर्श हो या दलित विमर्श। इसीलिए दलित लेखकों के अतिरिक्त गैर दलित साहित्यकारों के साहित्य में भी दलित जीवन की समस्याओं एवं दलित जीवन का चित्रण मिलता है। इतना ही नही गैर दलित लेखिकाओं चाहे वह मन्नू भंडारी हों या रमणिका गुप्ता, नमिता सिंह का उपन्यास 'अपनी सलीबें' हों या चित्रा मुदगल का 'आँवा' हो अथवा मन्नू भंडारी का 'महाभोज', सभी लेखिकाओं ने अपने कथा साहित्य में दलित जीवन का चित्रण करते हुये दलित समस्याओं को उकेरा है। मेरा विचार है कि दलित चेतना के विकास में लेखिकाओं का विशेष योगदान है। दलित साहित्य का भविष्य स्वर्णिम है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *तारा अली बेग 'वीमेन ऑफ इंडिया' 1958 नई दिल्ली।*
2. *जर्मन ग्रीयर 'दि फीमेल यूनेक' हिन्दी अनुवाद माधवी जोशी 'राजकमल प्रकाशन' दिल्ली , पृ0 10, 2001*
3. *डॉ0 विजया वारद, साठोत्तरी हिन्दी कहानी और महिला लेखिकायें, भूमिका से*
4. *डॉ0 सुदेश बत्रा, हिन्दी उपन्यास: बदलते परिवेश , पृ. 8*
5. *मन्नू भंडारी, महाभोज, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली 2014 पृ. 70*
6. *मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ. 74*
7. *नमिता सिंह, अपनी सलीबें, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ. 219*
8. *चित्रा मुदगल, आवां, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली , 2015 पृ. 399*
9. *रमणिका गुप्ता, मौसी, ज्योति लोक प्रकाशन, दिल्ली 2010 , पृ. 99*
10. *रमणिका गुप्ता, बहू जुठाई, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली पृ. 110*